

भारतीय संस्कृति और अर्थ व्यवस्था

सारांश

महाभारत में कहा गया है कि धर्म से अर्थ को उसी प्रकार दूर नहीं किया जा सकता जैसे स्वर्गलोक से अमृत को – 'नहि धर्मादपेत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम्'। निश्चय ही अर्थ का महत्व सभी युगों में समान रूप से रहा है केवल इसके अर्जन और व्यय करने में अन्तर अवश्य आया है। जब अर्जित धन का उपयोग शुभकार्यों में – दानादि में किया जाता है तो इसका सम्बन्ध आध्यात्मिकता से जोड़ दिया जाता है किन्तु जब इसका प्रयोग शारीरिक सुखों के लिए किया जाता है, तो उसे भौतिकता से सम्बद्ध कर देते हैं।

अर्थ को समस्त प्रयोजनों की सिद्धि में सहायक माना गया है—

यतः सर्वप्रयोजनसिद्धिः स अर्थः

अर्थ सभी लोगों के द्वारा अभिलषित है। "अर्थ" शब्द की व्याख्या है—

अर्थयते सर्वैः इति अर्थः।

मुख्य शब्द : भारतीय संस्कृति, अर्थ व्यवस्था

प्रस्तावना

दृश्यमान जगत् में सुखविशेष की उपलब्धि में अत्यन्त सहायक लगभग सभी पदार्थ अर्थ के अपर पर्याय के रूप में स्वीकार किये गये हैं। प्रयोजन के अनुसार स्त्री, पुत्र, पुत्री तथा अन्य भौतिक पदार्थ अर्थ के अन्तर्गत आते हैं। उदाहरण के लिए संस्कृत साहित्य के कविकुल गुरु कालिदास ने अपने नाटक "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" के चतुर्थ अंक में कन्या को 'अर्थ' के रूप में वर्णित किया गया है— अर्थो हि कन्या परकीय एव। व्याकरण, साहित्य और दर्शनादि शास्त्रों में इसे व्यापक रूप से ग्रहण किया जाता है। यद्यपि अर्थ का प्रयोग आवश्यकता तथा प्रसंगानुकूल विभिन्न प्रकार से होता है किन्तु यहाँ इसका प्रयोग चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) के अन्तर्गत धन के लिए किया है। अर्थ मानव के गन्तव्य मोक्ष में सहायक पुरुषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत द्वितीय सोपान में परिगणित है। अर्थ का जीवन में विशेष महत्व है क्योंकि अर्थ के बिना न तो जीवन निर्वाह किया जा सकता है और न ही धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन। कहा भी गया है—

सुखस्य मूलं धर्मः धर्मस्यमूलम् अर्थः¹

विचारकों ने तो धर्म, अर्थ तथा काम इन तीनों में से अर्थ की उपयोगिता को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया है। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि अर्थ के विना जीवन का अस्तित्व, रक्षण और संवर्द्धन नहीं किया जा सकता, धार्मिक तथा काम की सिद्धि भी कदाचित् संभव नहीं है, अतएव अर्थ की अपरिहार्यता सर्वथा युक्ति संगत है। स्मृतियों में भी धन का विशेष महत्व स्वीकार किया गया है। मनु ने तो स्पष्ट रूप से कहा है कि—

विषादप्यमृतं ग्राह्यं, कालादपि सुभाषितम्।

अमित्रादपि सद्वृत्तं अमेध्यादपि काञ्चनम्।²

अर्थात् विष से भी अमृत को, बालक से अच्छी बात को, शत्रु से सच्चरित्र को अपवित्र स्थान से भी स्वर्ण (धन) को ग्रहण कर लेना चाहिए। इस कथन से यह संकेत मिलता है कि विषम परिस्थिति में अर्थ परित्याज्य नहीं है। वस्तुतः भौतिक उपयोगिता के कारण धन की महत्ता को सर्वत्र स्वीकार किया गया है। अर्थाभाव को आपत्तियों का मूल कहा गया—

निर्धनता सर्वापदामास्पदम्³

अर्थवान् सर्वलोकस्यबहुसम्मतः।⁴

दारिद्र्यं खलु पुरुषस्य मरणम्।⁵

नीतिकार भर्तृहरि ने भी धनहीनता को अत्यन्त कष्टकारी बताया है—

जातिर्यातु.....येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे।⁶

धार्मिक क्रियाओं के सम्पादन के लिए तथा जीवन के सम्यक् निर्वाह के लिए धन आवश्यक है इसलिए वेदों के अन्तर्गत अनेकानेक मंत्रों में धनप्राप्ति की अभिलाषा व्यक्त है—



कनक रानी

एसोसिएट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
आर्य महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
शाहजहांपुर, उ० प्र०

आं प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वाजातानि परिता बभूव ।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्तो ऽस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥⁷

अर्थात् हे प्रभु ! तुम अनन्त ब्रह्माण्ड के स्रष्टा हो, सर्वाधिक सामर्थ्यवान हो, हम धनैषणा के लिए आपका स्मरण करते हैं, हमें सम्पत्ति का स्वामी बनाइये ।

मनुष्य का जीवन निर्वाह धन के द्वारा संभव है इसीलिए उसकी सारी क्रियायें अर्थमूलक होती हैं अतः स्मृतिकारों ने अर्थ को उपार्जित करने के साधनों पर व्यापक चर्चा की। मनुस्मृतिकार ने अर्थ के उपार्जन के साधनों को जीवन के साधनों के रूप में निरूपित किया। मनु ने इस साधनों को विशिष्ट स्थान दिया। दस साधनों में विद्या, शिल्प, नौकरी, सेवा, पशुपालन, व्यापार, कृषि, धैर्य, शिक्षा और ब्याज को जीवन का हेतु स्वीकार किया गया यथा—

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः ।

धृतिभैक्ष्यं कुसीदञ्च च दश जीवनहेतवः ॥⁸

अर्थोपार्जन के सन्दर्भ में मनु ने वृत्तियों का भी उल्लेख किया है। उन्होंने ऋतु, अमृत, मृत, प्रमृत, सत्य, अनृत नाम की वृत्तियों को अनुमोदित किया तथा बताया कि तथा शील वृत्ति 'अमृत' है क्योंकि इसमें किसी से कुछ भी याचना नहीं की जाती। भिक्षा मांगकर उपार्जित अर्थ को 'मृतवृत्ति' के अन्तर्गत रखा गया तथा कृषि को प्रमृतवृत्ति के अन्तर्गत माना गया। वाणिज्य को 'सत्यानृत' कहा गया—

ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन, प्रमृतेन वा ।

सत्यानृताभ्यां वा न श्ववृत्त्यां कदाचन ॥

ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम् ।

मृतं तु याचितं भैक्षम् प्रमृतं कर्षणां स्मृतम् ॥

सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते ।

सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥⁹

वृत्ति शब्द का अर्थ है — आजीविका, जीवन निर्वाह का साधन। उक्त श्लोकों में मनु ने उचित और अनुचित वृत्तियों का उल्लेख कर अर्थोपार्जन और अर्थ संचय में पवित्र वृत्ति को प्राथमिकता दी है। मनु ने सात प्रकार के धनागम को धर्मानुमोदित माना है —

सप्तवित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः ।

प्रयोगः कर्मयोगश्च सप्तप्रतिग्रह एव च ॥¹⁰

उक्त सात प्रकार धन 'शुद्ध' माने गये हैं क्योंकि ये शास्त्रोक्त द्वारा निर्दिष्ट अथवा अनुमोदित वृत्ति से उपार्जित होते हैं, ये धन हैं— दाय, लाभ, क्रय, जय, प्रयोग, कर्मयोग तथा सत्प्रतिग्रह। जो धर्मपूर्वक अपने पूर्वजों की सम्पत्ति से अपने अंश (हिस्सा) के रूप में प्राप्त होता है, वह "दाय" कहलाता है। मूलधन से जो उपार्जित होता है, वह "लाभ" कहलाता है। जो खरीदकर प्राप्त की जाती है, ऐसे धन को "क्रय" कहा जाता है। "जय" शब्द उस सम्पत्ति के प्रति प्रयुक्त होता है जो "धर्मयुद्ध" में राजा को पराजित कर प्राप्त होती है। मूलधन के व्याज के रूप में प्राप्त धन "प्रयोग" है तथा व्यापार व उद्योग धर्मों से प्राप्त धन "कर्मयोग" है। सत्प्रतिग्रह का अर्थ है वह धन जो धर्मानुमोदित विधि से दानस्वरूप गृहीत होता है। ये धन शास्त्रसम्मत होने के कारण "शुद्धधन" के रूप में निरूपित किये गये हैं।

इस संदर्भ में ध्यातव्य है कि अन्यायपूर्वक अर्जित अर्थ की आपदकाल में भी वर्जना की गयी। वृद्धहारीत स्मृति में तो इस धन को वर्जित बताया गया—

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं आपद्यपि विवर्जयेत् ॥¹¹

महर्षि मनु ने धर्मपूर्वक द्रव्य की वृद्धि हेतु प्रयास किये जाने पर बल दिया और धर्म सम्मत प्रयत्नों को ही श्रेयस्कर माना—

“धर्मेण द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद यत्नमुत्तमम्” ॥¹²

स्मृतिग्रन्थों में अनुचित साधनों के माध्यम से किये गये द्रव्योपार्जन तथा द्रव्य संग्रह को निरादृत किया गया है। महर्षि मनु ने अर्थ की पवित्रता को विशेष महत्व दिया है और विविध पवित्रताओं में 'अर्थ की पवित्रता' को सर्वोपरि माना है। अर्थ का उपार्जित करने का साधन पवित्र है तो वह अर्थ पवित्र माना गया।

“सर्वोषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।

योऽर्थं शुचिर्हि स शुचिः” ॥¹³

कहने का आशय यह है कि मनुष्य की वृत्ति धर्मसम्मत होना चाहिए। धर्मविरोधी वृत्ति से अर्जित अर्थ को त्याज्य माना गया। मनु ने स्पष्ट निर्देश दिया कि अनुचित वृत्ति से उपार्जित किये गये अर्थ का सर्वथा परित्याग करना चाहिए—

परित्यजेदर्थकामौ यो स्यातां धर्मवर्जितौ ।

धर्म चाप्यसुखोदरकं लोकविकृष्टमेव च ॥¹⁴

अनुचित द्रव्योपार्जन लोक निन्दित है, तथा वृत्ति को कदापि नहीं अपनाना चाहिए। धर्मविरुद्ध उपायों से मिला हुआ धन परलोक विरोधी है जो मनुष्य के गन्तव्य प्राप्ति में बाधक है। इस प्रकार की वृत्ति का आश्रय लेना वाला व्यक्ति अधार्मिक कहा जाता है और वह सुख की प्राप्ति नहीं कर सकता—

अधार्मिक नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।

हिंसारतश्च यो नित्यं नेहारसौ सुखमेधते ॥¹⁵

इस सन्दर्भ में मनु का स्पष्ट अभिमत है कि धन को अर्जित करने का साधन सदैव लोक समर्थित होना चाहिए। इसीलिए उन्होंने अर्थ को धर्म से सन्नद्ध कर दिया कि—

ब्राह्म मुहूर्ते बुध्येत् धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ॥¹⁶

अर्थात् ब्रह्म मुहूर्त में उठकर धर्मार्थ का चिन्तन करना चाहिए। यहाँ विशेष रूप से ध्यातव्य है कि धर्म के चिन्तन के साथ ही अर्थ के चिन्तन कर निर्देश दिया गया आर्थिक समस्याएँ और उनका समापन समाज हित में नितांत अपेक्षित है। वस्तुतः पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म के उपरान्त ही अर्थ को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अध्यात्मवेत्ताओं ने धर्मपूर्वक अर्थार्जन और अर्थव्यय पर बल दिया है। निश्चय ही अर्थ जीवन के गन्तव्य मोक्ष का एक सोपान है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अर्थ से जीवन को सार्थकता मिलती है। अर्थ के बिना तो जीवन निरर्थक व कष्टकारी प्रतीत होता है। धर्मादि कार्यों में सन्नद्ध अर्थ मोक्षोधिगम में साधक है, बाधक नहीं। आवश्यक है कि धन का अर्जन धर्मसम्मत अर्थात् उचित साधनों के द्वारा किया जाए तथा धन का प्रयोग भी धर्मादि कार्यों हेतु किया जाये।

विष्णु स्मृति में कहा गया कि धन का कभी भी दुरुपयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि धर्म और काम दोनों अर्थ पर ही प्रतिष्ठित है—

जीवितं धर्मकामौ च धने यस्मात् प्रतिष्ठितौ ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धनं हिंसा विवर्जयेत् ॥¹⁷

महर्षि मनु ने अर्थ सञ्चय के लिए पाँच नियमों का उल्लेख किया है। प्रथम अर्थ संग्रह करते समय किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचे। द्वितीय अर्थ संग्रह करते हुए अपने शरीर को भी कष्ट न पहुँचे। तृतीय अपने ही पुरुषार्थ द्वारा अर्जित धन द्वारा जीवन निर्वाह करे। चतुर्थ निन्दनीय कर्म से युक्त होकर अर्थ नहीं उपार्जित किया जाये। पंचम, अर्थोपार्जन के कारण स्वअध्ययन में विघ्न न उत्पन्न हो। उन्होंने अर्थ संचय के क्षेत्र में समाज का मार्गदर्शन किया है यथा—

अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ।
या वृत्तिस्तां स्मास्थाय विप्रोजीवेदनादपि ॥
यात्रामात्र प्रसिद्धयर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः ।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत् धनसञ्चयम् ॥¹⁸

अन्यायपूर्वक अर्जित अर्थ अनेकानेक दोषों को जन्म देने वाला है अतएव अर्थोपार्जन तथा अर्थसंचय दोनों के संदर्भ में पवित्र साधनों का उपयोग उचित है—

स्तेयं हिंसानूतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥
एते पञ्चदशाऽनर्था अर्थमूला मता नृणाम् ।
तस्मादनर्थमर्थारव्यं श्रेयाथी दूरतस्त्यजेत् ॥¹⁹

अर्थात् चोरी, हिंसा, अनृत, दम्भ, काम, क्रोध, मद, अहंकार, मद, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, व्यसन, द्यूत आदि अनेकों दुगुणों को उत्पन्न करता है। अतः अर्थ की पवित्रता पर विशेष रूप से ध्यान देना उचित है। कुछ स्मृतिग्रन्थों में व्याज के रूप में अर्जित किया गया धन 'कृष्ण' कहा गया है तथा उसे निन्दनीय घोषित किया गया—

व्याजेनोपार्जितं यच्च तत्कृष्णं समुदाहृतम् ॥²⁰

अर्थ संचय और अर्थसंग्रह के संदर्भ में 'सन्तोष' नीति तत्व का बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य है। 'सन्तोष' को योगदर्शन के अन्तर्गत नियमों— (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान) में परिगणित किया गया है। यह तत्व मानव को अतिसञ्चय वृत्ति से पृथक् करता है जिसे आर्थिक सन्तुलन की दृष्टि से भारतीय संस्कृति का अन्यतम आदर्श कहा जा सकता है। यह व्यवस्थापक पहलू त्यागमूलक संस्कृति का उदात्त पक्ष है।

नीतिग्रन्थों में धन की महत्ता को गौण रखते हुए आचरण की प्राथमिकता का निरूपण किया—

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमायाति याति च ॥

अर्थात् धन तो अस्थिर है, आता-जाता रहता है वित्त का संरक्षण इतना महत्व नहीं रखता जितना आचरण का अथवा चरित्र। अतः आचरण की यत्नपूर्वक संरक्षा की जानी चाहिए। नीतिकारों का कथन है कि धन तो लौकिक सुखोपलब्धि में सहायक है जबकि वृत्त मनुष्य के अभीष्ट की प्राप्ति में मुख्य भूमिका का निर्वाह करता है, अतः 'वृत्त' सदा रक्षणीय है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में अर्थ के प्रति दृष्टिकोण को जानने के लिए कठोपनिषद् के अन्तर्गत

नाचिकेता की कथा का संदर्भ लेना उचित है। नाचिकेता चिंतक है, अध्यात्म का प्रबल जिज्ञासु है, उसे यम ने जीवन के बहुत से भौतिक प्रलोभनों से आकर्षित करने का प्रयास किया, उसके समक्ष धन की— सुखोपयोग की लम्बी-चौड़ी श्रंखला रख दी किंतु नाचिकेता जीवन की नश्वरता और धन सम्पत्ति के अस्थायित्व से अनभिज्ञ नहीं है। यही कारण था कि उसने धन की तुलना में ज्ञान को प्राथमिकता दी और स्पष्ट रूप से कह दिया कि धन के द्वारा मनुष्य की पूर्ण तृप्ति नहीं हो सकती। नाचिकेता के द्वारा बड़ी ही सहजता से यथार्थ तथ्य उद्घाटित किया गया कि धन के माध्यम से जीवन में पूर्ण संतुष्टि कदाचित् ही संभव है —

“न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो” ॥²¹

अर्थ के प्रति यह निर्लिप्त दृष्टिकोण हमारी भारतीय संस्कृति का आदर्शमूलक तथा त्यागपरक पक्ष है। राजा भर्तृहरि ने भी धन को गौण तथा न्यायपथ को प्राथमिकता दी। धन साधन है साध्य नहीं। उन्होंने कहा कि लक्ष्मी (धन) रहे अथवा न रहे किन्तु जो विद्वान, धीरजन होते हैं वे न्याय के मार्ग से कभी भी विचलित नहीं होते—

“लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्” ।

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥²²

वस्तुतः यह विचारशैली आदर्श परक भारतीय संस्कृति व त्यागमूलक आर्थिक व्यवस्था का आचरणीय पक्ष है।

वर्ग विद्वेष से बचने के लिए, आर्थिक समानता को लक्ष्य में रखते हुए मन्त्र दृष्टा ऋषियों ने तथा स्मृतिप्रणेताओं ने त्याग, अलोलुपत्व और दान जैसी आदर्श वृत्तियों को मुखर किया। “परद्रव्यं लोष्टवत्” जैसी सूक्तियों के द्वारा समाज को लोलुपता से विमुख करने का प्रयास किया गया।

अस्तु, धन के प्रति त्यागपरक चिन्तन का संप्रेषण यजुर्वेद में निहित है, जो मानव मात्र के लिए एक अनुकरणीय संदेश कहा जा सकता है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥²³

उद्देश्य

अर्थ (धन) को पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) में परिगणित किया गया है। मानव जीवन के गन्तव्य की प्राप्ति में अर्थ को सहायक माना गया है। अर्थ का स्वरूप धर्मसम्मत हो तथा लोकमंगल का विधायक हो, इस दिशा में अर्थार्जन से सम्बन्धित व्यापक जानकारी वैदिक संहिताओं व स्मृतिग्रन्थों में उपलब्ध हैं।

निष्कर्ष

यहाँ अर्थ के उपयोग पर भी अंकुश लगाया गया। “त्यागपूर्वक, उपभोग करो” “किसी के धन को गृहण करने की इच्छा मत करो”। इस संदेश में अनासक्ति की ओर उन्मुख किया गया। इस भाव के द्वारा जगत् को अर्थ के क्षेत्र में सुव्यवस्थित करने का प्रयास किया गया। इसे हम आर्थिक सन्तुलन का उद्गम स्थल करें तो यह सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है। इस त्यागमय जीवन शैली की सत्प्रेरणा से मनुष्य जीवन के कल्याण तथा सामाजिक कल्याण की दिशा मिलती है। यहाँ यह

कहना सर्वथा सुसंगत है कि अर्थ के न्यायपूर्वक उपार्जन व समुचित संचय से समाज को एक सकारात्मक दिशा मिलना संभावित है। अर्थ का रूप अनर्थकारी न हो, भारतीय मनीषियों ने समुचित उपायों का भी उल्लेख किया और समाज को अर्थ के क्षेत्र में एक अनुकरणीय व्यवस्था दी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चाणक्य सूत्र/1/1-2
2. मनस्मृति:/2/239
3. मुच्छकटिकम्
4. चाणक्यसूत्र/4/22
5. चाणक्यसूत्र/4/24
6. नीतिशतकम्/32
7. ऋग्वेद/10/121/10
8. मनुस्मृति:/10/116
9. मनुस्मृति:/4/4, 5, 6
10. मनुस्मृति:/10/115
11. वृद्धहारीत/4/166
12. मनुस्मृति:/9/333
13. मनुस्मृति:
14. मनुस्मृति:/4/176
15. मनुस्मृति:/4/170
16. मनुस्मृति:/4/92
17. विष्णुस्मृति:/अध्याय 52
18. मनुस्मृति:/4/2, 3
19. श्रीमद्भागवत्पुराण/11/13/18/19
20. नारदीयस्मृति:/1/43
21. कठोपनिषद्/27
22. नीतिशतकम्/76
23. ईशावास्योपनिषद्/मंत्र 1